वेदान्त मिशन की मासिक ई - पत्रिका
वेदान्त पीयूष
वर्ष २३
जुलाई - २०२३
प्रकाशन - ०७

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

जुलाई 2023

प्रकाशक

वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

वेदान्त पीयूष

विषय सूचि

जुलाई 2023

रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते।
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्मद्बुद्धेस्तु नात्मनः॥

(श्लोक - २३)

राग-द्वेष, सुख-दुःख तथा इच्छा आदि मन के अन्तर्गत की विविध वृत्तियों का सुषुप्ति अवस्था में कोई अस्तित्व नहीं होता है, किन्तु बुद्धि के जगने के उपरान्त हुआ करती है।
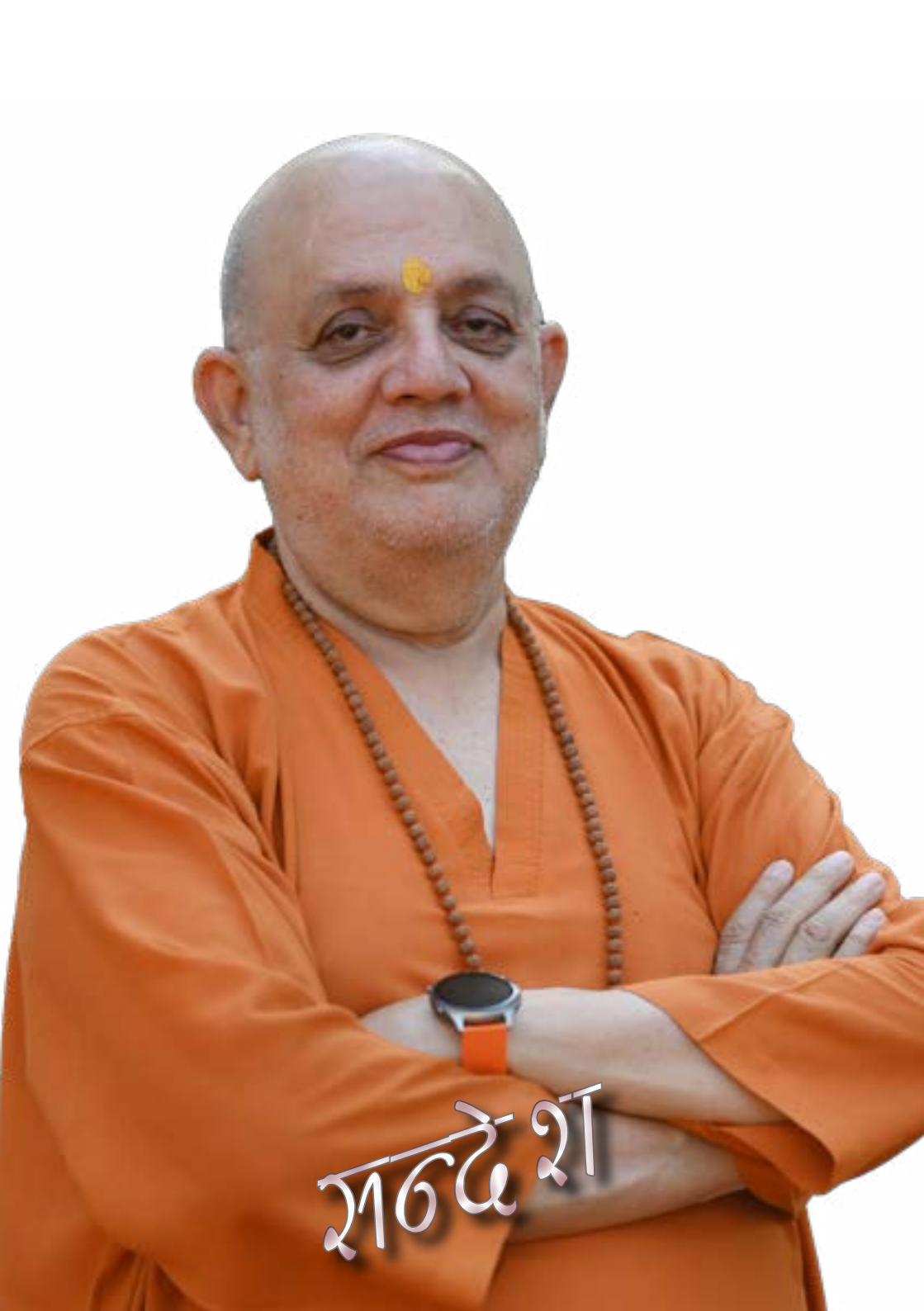
कल्पना और ज्ञान में भेद

जीव का बन्धन अज्ञानवशात् की हुई कल्पना की वजह से है। कल्पना अविचारपूर्वक किया गया निश्चय है। कल्पना के उपरान्त एक व्यक्तित्व बनता है। धर्माचरण से इसी व्यक्तित्व को सत्य मानते हुए उसे निखारने का कार्य होता है। जहां व्यक्ति के व्यक्तित्व को अन्ततः सात्विक बनाने तक की यात्रा होती है। अपने इस व्यक्तित्व को सत्य मानकर अच्छे कर्म करें। जब हम एक संकुचित व्यक्ति सत्य है तो उसकी ही अपेक्षा जगत भी सत्य है। अतः जगत के संचालक जगदीश्वर को भी सत्य मानते हुए श्रद्धापूर्वक स्वीकारा जाता है। इस प्रकार जीव, जगत और ईश्वर रूप खण्ड का अनुभव होने लगता है।

कल्पना और ज्ञान में भेद

समस्त जगत् इन्हीं जगदीश्वर की रचना और व्यवस्था है। उन्हींकी व्यवस्था के अन्तर्गत, उनके अधीन रहते हुए समस्त प्रकृति अपना अपना कार्य करती है। उस व्यवस्था के हम भी एक अंग है। हमारा जीवन, जीवन का संचालन, विविध परिस्थिति की प्राप्ति आदि उन्हीं जगदीश्वर की कृपा व करुणा का परिचायक है। धर्मशास्त्र न केवल इसकी संवेदना जगाता है, अपितु उसके अन्तर्गत व्यापक, उदात्त अर्थात् समष्टि दृष्टि से युक्त होकर निरभिमानी, निःस्वार्थ, धन्यता से युक्त जीवन की कला सीखाता है। धर्माचरण से वसुधा एव कृटुम्बकम् की भावना आने लगती है कि जहां समस्त जड़, चेतन प्रकृति समेत पूरी वसुधा हमारा एक परिवार है और हम उस परिवार के सदस्य है। ऐसी उदात्त दृष्टि का समावेश होना व धन्यतायुक्त जीवन होना यही धर्माचरण का लक्ष्य है। ऐसा व्यक्ति ही सात्विक अन्तःकरण होता है। उसके लिए आगे की अर्थात् मुक्ति की यात्रा प्रशस्त होती है।

कल्पना और ज्ञान में भेद

मोक्षशाास्त्र इस कल्पित व्यक्तित्व से मुक्त करता है। जिसे मैं अर्थात् जीव समझ रहे थे, वह कल्पना है। जीवत्व की अस्मिता ही अपने संकुचित होने की कल्पना, असुरक्षा व अपूर्णता का अर्थात् संसार का हेतु है। जब तक हमारी यह अपूर्ण अस्मिता खतम नहीं तब तक संसार बना रहता है। यह अज्ञानवशात् किया गया अप्रामाणिक निश्चय मात्र है। अतः कुछ करने से नहीं किन्तु अन्तर्मुख होकर उस पर विचार करने से ही कल्पना से मुक्ति होती है। इसके लिए अज्ञान की विनम्रता से युक्त होकर, संन्यस्त मन से गुरुउपसदन किया जाना चाहिए। ऐसे संन्यस्त, विरक्त मन में गुरु-शास्त्र प्रमाण से ज्ञान होकर समस्त कल्पनाएं बाधित होकर यथार्थ में अर्थात् अपनी ब्रह्मस्वरूपता में जाग्रति होती है। इस प्रकार जीव से मुक्ति तक की यात्रा में धर्माचरण से कल्पित जीव को ही दैविक बनाकर, गुरुमुख से शास्त्र का प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त करना है।

वेदान्त लेख
अहम् ब्रह्मास्मि

कर्म की सीमा

प्रत्येक जीव की यात्रा कर्मक्षेत्र से ही आरम्भ होती है। कर्म की अध्यात्मयात्रा में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उससे आत्मज्ञान हेतु मन को पात्र बनाया जाता है। मन की रागादि अशुद्धि की निवृत्ति होती है, मन शान्त, सूक्ष्म, विचारशील और अन्तर्मुख होता जाता है। यह कर्मक्षेत्र की सब से महान उपलब्धि है। किन्तु यह तब सम्भव होता है कि जब कर्म के पीछे अपना रवैया उचित हो, कर्म को कर्मयोग बनाकर जीएं। यही धर्मशास्त्र का भी विषय है।

ऐसी महत्वपूर्ण भूमिका होते हुए भी अधिकतर अज्ञानजनित मोह व उचित शिक्षा के अभाव में कर्मक्षेत्र को अनुकुलता की प्राप्तिमात्र का साधन समझता है। प्रतिपल यह अनुभव होता है कि ऐसा सुख प्राप्त करने पर भी प्यास ज्यों कि

कर्म की सीमा

त्यों बनी रहती है। सर्वोत्कृष्ट आनन्द प्राप्त हो जाएं तो भी धन्य व कृतार्थ होकर नहीं जीते है। उसके उपरान्त भी प्यासे भोक्तामात्र बने रहते है। आत्मज्ञान हेतु कर्मक्षेत्र की सीमा समझनी चाहिए। कर्म के द्वारा एक आदर्श व्यवस्था, स्वर्गतुल्य जीवन भी बना लें तो भी प्यास समाप्त नहीं। कर्मक्षेत्र से मुक्ति सम्भव नहीं है।

वेदान्त का ज्ञान निषेधात्मक है, जहां अपने उपर के अध्यारोप का अपवाद मात्र किया जाना है।

जो कर्मक्षेत्र व तज्जनित उपलब्धियों की सीमा समझते हुए उसे ही मूल लक्ष्य नहीं समझता, परिणामस्वरूप कर्मक्षेत्र का महत्व गौण होता जाता है। वह कर्म से संन्यस्त होता है। तब ब्रह्मज्ञान के कक्ष में प्रवेश सम्भव होता है। ऐसा मन समग्रता से पूर्णतया 'जो है' उसे समझने को उपलब्ध हो जाता है। वहां अज्ञान की विनम्रता और प्रामाणिक स्रोत से ज्ञानप्राप्ति हेतु शरणागति होती है। ऐसा साधक जब गुरु के चरणों में ज्ञान के लिए समर्पित होता है, तब गुरु उसे

कर्म की सीमा

ज्ञान के लिए पात्र जानकर वेदान्त का विधिवत् ज्ञान प्रदान करते हैं। इस ज्ञान में भी किसी विधि-निषेध का स्थान नहीं होता, अपिन्तु निषेधात्मक ज्ञान अर्थात् अपने उपर की गई कल्पना व अध्यारोप की निवृत्ति का ज्ञान दिया जाता है। जो इसके लिए उपलब्ध होता है, वही मोक्ष रूप परं पुरुषार्थ की सिध्दि करता है। ।

आदि शंकराचार्य

द्वारा

विरचित

वाक्यवृत्ति

स्वामिनी अमितानन्द

यस्य प्रसादादहमेव विष्णुः मयि-एव सर्व परिकल्पितं च।
इत्थं विजानामि सदात्मरूपं तस्यान्घ्रि पद्मं प्रणतोऽस्मि नित्यम्।।

वाक्यवृत्ति

वाक्यवृत्ति ग्रन्थ आदि शंकराचार्य द्वारा रचित वेदान्त का एक प्रकरण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ वेदान्त के महावाक्य पर वृत्तिस्थानीय अर्थात् व्याख्यारूप है। महावाक्य का अभिप्राय है – अखण्डार्थबोधकानि महावाक्यानि। उपनिषद में जहां पर भी ऐसे वाक्य अर्थात् मन्त्र प्राप्त होते है, उसे महावाक्य कहा जाता है। चार वेदों के प्रसिद्ध चार महावाक्य है। 1. प्रज्ञानं ब्रह्म 2. अयमात्मा ब्रह्म 3. तत्त्वमसि 4. अहं ब्रह्मास्मि।

उसमें से अहं ब्रह्मास्मि महावाक्य पर व्याख्यारूप ग्रन्थ लघुवाक्यवृत्ति है। यह वाक्यवृत्ति नामक ग्रन्थ सामवेद के अन्तर्गत के छान्दोग्य उपनिषद् का तत्त्वमसि महावाक्य पर व्याख्यारूप है। इस महावाक्य में तीन पद है। 1. तत् अर्थात् वह अर्थात् जो आज हमारे लिए परोक्ष है वह ईश्वर 2. त्वं अर्थात् जो अपरोक्ष

है वह तुम अर्थात् जीव और असि अर्थात् इन दोनों का ऐक्य। साधारणतः अज्ञान में विद्यमान जीव अपने आपको संकुचित, अपूर्ण मानकर ही जीता है। इस वजह से पूर्ण होने की कामना से बाह्य जगत में विविध चेष्टा व प्रयास करता है। किन्तु उनकी यह चेष्टा क्षितिज को छूने की चेष्टा के समान ही सिद्ध होती है। क्योंकि संकुचित जीव के सामर्थ्य भी सीमित होते है तथा जिसमें से पूर्ण होने की आकांक्षा करता है वह भी देश–कालादि के दायरे में सीमित होता है। किसी सत्संग आदि के प्रभाव से यह ज्ञात हुआ कि जो पूर्णता अर्थात् मुक्ति की अभिलाषा से युक्त है, वह पूर्णतत्त्व तो ईश्वर ही है। तब भी ईश्वर रूप साध्य के स्वरूप का अज्ञान व अस्पष्टता होने से पुनः कर्म–उपासना

आदि का आश्रय लेकर उसे पाने की चेष्टा करता है। ऐसे जीव को यह उपदेश दिया जाता है कि जिसे तुम खोज रहे हो, वह ईश्वर अर्थात् पूर्णस्वरूप परमात्मा तुम ही हो।

यद्यपि शास्त्र और गुरु के प्रति श्रद्धा से उसे मान लिया जाय तो भी अनुभव तो यही बोलता है कि कहां हम एक संकुचित जीव? हमारा ज्ञान, सामर्थ्य आदि भी संकुचित है, काल से सतत प्रभावित होते रहते है। देश, काल, वस्तु की सीमाओं से बद्ध है। दूसरी ओर परमात्मा देश आदि की संकुचिता से रहित, अनन्त सामर्थ्य, ज्ञान से युक्त है। वह हम कैसे हो सकते है? अतः इतना कहना मात्र कि तुम ही वह हो, यह पर्याप्त नहीं है। इस वाक्य का अर्थ अन्य वाक्यों की तरह अर्थात् शब्दार्थ मात्र को पकडकर ग्रहण नहीं किया जा सकता है। इसलिए उसकी व्याख्या की आवश्यकता पडती है। इसी बात को ध्यान मं रखकर आचार्य इस महावाक्य पर व्याख्या कर रहे हैं। उसके बारे में आगे के अंकों चे विचार किया जाएगा।

गीता और मानवजीवन
पूज्य स्वामी विदितात्मानन्दजी
–: ०१ :–
मेरा धर्म

गीता और मानवजीवन

महात्मागण भगवद्गीता का विषय समझाते हुए बताते हैं, 'गीता का आरम्भ ''धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे..'' अर्थात् धर्म शब्द से हुआ है और अन्त, 'ध्रुवा नीतिर्मम'' शब्द से हुआ है; इसलिए गीता का विषय 'मम धर्म' अर्थात् हमारा धर्म है।'

धर्म किसको कहते है? जो धारण करता है, उसका नाम है धर्म। कौनसी वस्तु किसको धारण करती है? वस्तु का मूलभूत स्वरूप ही वस्तु को धारण करतमा है। जैसे कि, आभूषण को धारण करता है - स्वर्ण। घड़े को धारण करती है - मिट्टी। इसलिए स्वर्ण आभूषण का, तथा मिट्टी घडे का मूलभूत धर्म है

कि जिसके बगैर न आभूषण आभूषण हो सकते है, नहीं घडा घडा हो सकता है। इसे धर्म कहा जाता है। 'मम धर्म' अर्थात् मेरा धर्म। मेरा धर्म क्या है? ऐसी कौनसी वस्तु है कि जिसके बगैर मैं मैं नहीं हो सकता है? इसकी समझ हमें शास्त्र प्रदान करते हैं। 'अहमस्मि सदा भामि, कदाचिन्नाहमप्रियः मैं हूं, मुझे सदा मेरा भान है, तथा कभी भी मैं अपने आपको अप्रिय नहीं हूं।' यह मैं कौन है? ऐसा प्रश्न यदि पूछा जाएं तो 'मैं' के विषय में क्या हम कोई निश्चित वस्तु कह सकते है? 'मैं' के बारे में इतने सारे विचार आते हैं, जो निश्चित होते नहीं है। वे सब सतत परिवर्तित होते रहते हैं। कभी 'मैं सुखी हूं' कभी 'मैं दुःखी हूं' कभी 'मै' जाग्रत हूं , कभी 'मैं' वक्ता हूं, कभी 'मैं' श्रोता हूं, इस प्रकार 'मै का धर्म बारबार परिवर्तित होता रहता है। किन्तु 'मैं' की सतत बदलती हुई स्थिति में भी कोई ऐसा सूर, ऐसा सूत्र है, जो सब अवस्थाओं को जोड़कर रखता हो? यह है – 'मै

हूं'। क्रिया बदलती रहती है, वेश बदलता रहता है, किन्तु 'मैं हूं' वह सतत बरकरार रहता है। ऐसी एक भी क्षण नहीं है कि जब 'मैं हूं' का भान न होता हो, उसका अस्तित्व न हो, अर्थात्, 'मैं' के होने को नकारा नहीं जाएं; ऐसी कौनसी वस्तु है? मेरे बारे में सब कुछ आप नकार सकते है, 'मैं बुद्धिमान् हूं' 'मैं सुन्दर हूं' 'मैं शक्तिशाली हूं' ऐसा यदि कहें तो वह नकारा जा सकता है। किन्तु 'मैं हूं' उसे नहीं नकारा जा सकता। किसी भी व्यक्ति को हमें इतना यश तो देना ही चाहिए, 'मैं हूं' यह तो स्वीकारना ही पडेगा। इस प्रकार 'मैं हूं' यह मेरी सिद्धि है, उसके लिए मुझे किसी भी प्रकार का प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। दूसरी बात, 'सदा भामि' मैं का सतत भान
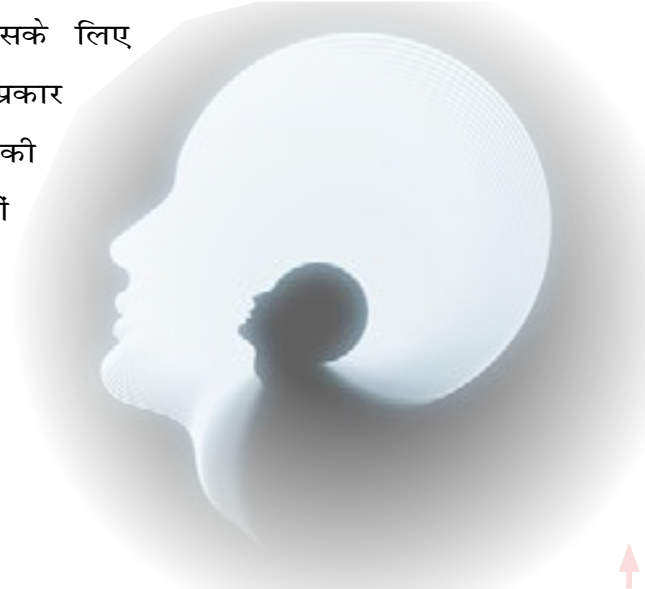
हो रहा है, मैं सतत प्रकाशित हो रहा है। 'मैं हूं' यह ज्ञान कब होता है? जब 'भान' हो तब। किसी भी पदार्थ के बारे में ऐसा कब कहा जा सकता है? जब उस पदार्थ का भान होता हो, जब वह पदार्थ मेरे ज्ञान का विषय बनता हो। उसके बगैर कोई वस्तु 'है' ऐसा नहीं कहा जा सकता। जो वस्तु मेरे ज्ञान का विषय नहीं होता वह 'है' ऐसा नहीं कहा जा सकता। जो वस्तु मेरे ज्ञान का विषय न हो वह 'है' ऐसा सिद्ध नहीं हो सकता। तीसरी बात – ऐसा कभी भी नहीं होता कि 'मैं स्वयं को अप्रिय है' अर्थात् मैं अपने आपको सदैव प्रिय है। मेरी दृष्टि में, इस जगत में सब से सुन्दर या सब से प्रिय वस्तु हो तो वह 'मैं है, जिसे शीशे में देखते हुए कभी भी मैं थकता नहीं हूं। इस प्रकार मेरा मेरे लिए स्वाभाविक प्रेम है; यह प्रेम उत्पन्न करना नहीं पड़ता है। सभी इस प्रेम के साथ ही जन्मे है। उसका नाम है स्वभाव। स्वभाव अर्थात् जो हमें सहज रूप से प्राप्त है, सिद्ध है।

गीता और मानवजीवन

इस प्रकार 'मैं हूं' मेरा मुझे भान है' और 'मैं प्रिय हूं' यह तीन वस्तु मेरे बारे में ऐसी होती है कि उसे किसी भी परिस्थिति में नकारा नहीं जा सकता। जिस प्रकार आभूषण का, या घडे को तोडने पर स्वर्ण तथा मिट्टी का कुछ भी नहीं होता है। उसी प्रकार इस उपाधि का, नामरूप का कुछ भी हो, 'मैं हूं' 'मैं भासित होता हूं' और 'मैं प्रिय हूं' उसे कभी भी नकारा नहीं जा सकता। 'मैं हूं' यह अस्तित्व (सत्) को दर्शाता है; मैं भासित हो रहा हूं' यह ज्ञान (चित्) को दर्शाता है तथा 'मैं प्रिय हूं' यह आनन्द को दर्शाता है, क्योंकि आनन्द वहीं होता है, जहां प्रेम होता है। स्वर्ण जिस प्रकार आभूषण का धर्म अर्थात् स्वरूप है,

गीता और मानवजीवन

मिट्टी जिस प्रकार घडे का स्वरूप अर्थात् धर्म है; उसी प्रकार सत्, चित्, आनन्द वह मेरा स्वरूप है, मेरा धर्म है। यही वास्तविक मनुष्य का धर्म है, प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। इस धर्म का ज्ञान देना यह भगवद्गीता का मूल विषय है।

– ३५ –

उत्तरकाशी

परं पूज्य स्वामी तपोवन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवन्मुक्त
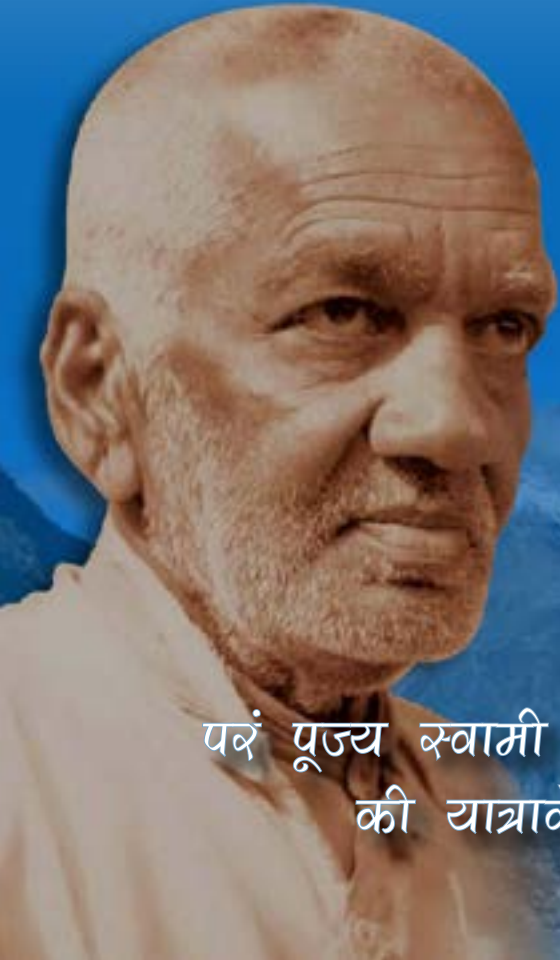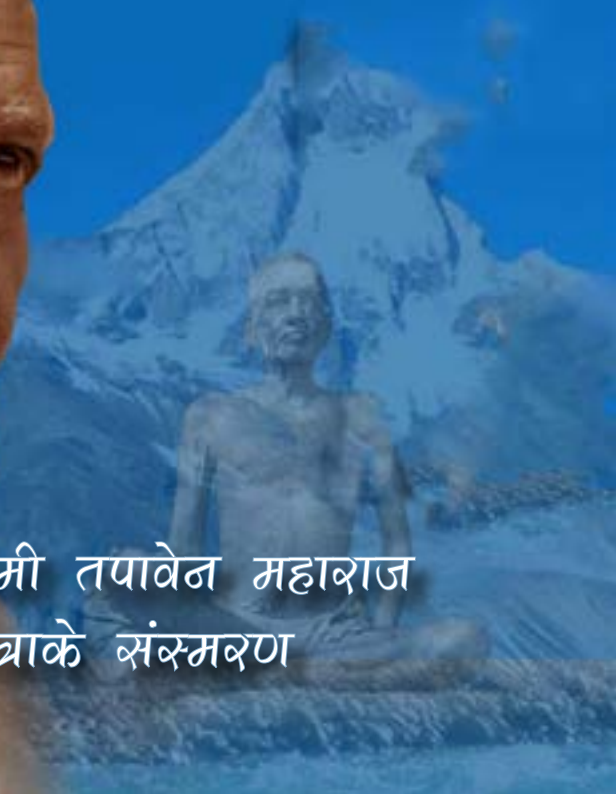
सायंकाल हुआ। सूर्य भगवान् की अरुण किरणों के फैल जाने से दिशाएं अरुणिमा से भर गयी थी। सरोवर का स्वच्छ जल भी प्रतिबिम्ब को ग्रहण कर अरुणिम होकर दिव्य सुषमा संपत्ति के साथ शोभायमान था। चुंकि शीत असहनीय था, इसलिए पर्वतीय लोग लकडियां इकट्ठी करके सारी रात आग जलाते रहें। रात के समय न जाने वहां विपिन के बीच से कैसी विलक्षण तथा दिव्य ध्वनियां सुनायी दे रही थी।

प्रभात हुआ, मैं उस पर्वतीय नेता के साथ उस दिव्य सरोवर की परिक्रमा करने निकला। महादुर्घट और विकट् घाटियों से घने वन के बीच झुककर सरकते हम दोनों परिक्रमा करने लगे।

उन पहाडी लोगों ने परिक्रमा के बीच मुझे ऐसे कई विषैले पौधे, जिनके पुष्पों की गंध से ही मनुष्य मूर्छित होकर गिर पडेंगे, दिखाये। इतना ही नहीं, उस सरोवर के विषय में कई आश्चर्यजनक इतिहास भी वे मुझे सुनाते रहे। मेरा मन सरोवर की महिमा सुनते सुनते भक्ति तथा आदर से संभृत होता गया। पौन घंटे में हम उस छोटे सर की परिक्रमा कर चुके, जिसका घेरा सिर्फ चार-पांच फर्लांग था। भागीरथी की पोषक नदी तथा उत्तरकाशी की उत्तर-अवधिभूत 'असि' नदी देखिएं, इस सरोवर से एक छोटी जलधारा के रूप में निकलकर धीरे धीरे प्रवाहित हो रही है। पहाड़ी ब्राह्मण को पुरोहित बनाकर हम सब ने सरोवर में स्नान, पूजा, भजन आदि धार्मिक क्रियाएं यथाविधि सम्पन्न की। मुझे ऐसा लगा कि जैसे पर्वतीय लोगों ने गांव में हमे बताया था, वही यह देवों तथा ऋषियों की निवासभूमि है, और यह

स्थान इतना निगूढ एवं दिव्य है कि मनुष्यों के लिए गन्तव्य नहीं हो सकता। दिव्य दिव्य ही रहेगा। मुझे ऐसा भी मालूम हो रहा था कि मेरा मन मुझे उपदेश दे रहा है कि, मानुषी संसार से जरा भी सम्बन्ध न रखनेवाले किसी दिव्य लोक में खडा मैं यह स्नान भजनादि कर रहा हूं। अहा! कौन जाने, मनुष्यों की विचारसरणी से अलग कितने ही निगूढतत्त्व इस प्रदेश में अन्तर्लीन हुए पडे है?

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)
श्री मनु और दशरथ चरित्र
– ०४ –
धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।।

मनु और दशरथ चरित्र

महाराज मनु से ईश्वर वरदान मांगने का आग्रह करते है और वे प्रभु से पुत्ररूप में अवतरित होने का अनुरोध करते हैं।

इस वरदान की याचना के पीछे कौन सा मनोभाव विद्यमान है, यह विचारणीय तथ्य है। इसे कई दृष्टियों से देखा जा सकता है। सर्वप्रथम मनु के रूप में सामूहिक कल्याण का भाव अब भी उनमें दिखाई देता है। वे व्यक्तिगत रूप से मुक्ति की कामना नहीं करते। स्वयं मृत्युलोक से ऊपर उठकर किसी दिव्यलोक में निवास करने की आकांक्षा भी उनमें दिखाई नहीं देती। वे ईश्वर से ही मृत्युलोक में

अवतरित होने का अनुरोध करते हैं। इस तरह उनका वरदान लोक–कल्याण की भावना का प्रतीक माना जा सकता है। किन्तु इस वरदान का मनोवैज्ञानिक रहस्य केवल इतना ही नहीं है। वस्तुतः 'होइ न विषय विराग' का तथ्य अब भी कहीं न कहीं अन्तस्तल की गहराईयों में विद्यमान था। उनकी कठिन तपस्या भी विषय के प्रति आकर्षण के मूल उत्स को विनष्ट करने में समर्थ नहीं हुई थी। जब वे प्रभु से पुत्र बनने की प्रार्थना करते हैं तब भी उनके अन्तःकरण में गार्हस्थ्य जीवन के सुखोपभोग की कामना विद्यमान है। वरदान की स्वीकृति के पश्चात् प्रभु के द्वारा दिए गए आदेश में भी यही तथ्य सांकेतिक रूप में देखा जा सकता है। उन्हें आदेश मिलता है कि वे कुछ समय पश्चात् शरीर का परित्याग कर स्वर्ग में निवास करेंगे। वहां के विशाल भोगों को भोगते हुए जब वे पुनः दशरथ के रूप में जन्म लेंगे तब प्रभु को पुत्र रूप में प्राप्त करने की उनकी अभिलाषा पूर्ण होगी।

अपने विवेक के द्वारा उन्होंने विषय-सेवन की तीव्र अभिलाषा से मुक्ति पा ली थी, पर संस्कार के रूप में वह अब भी उनमें विद्यमान थी। स्वर्ग में रहकर विषय-भोग की आज्ञा उसी संस्कार में निहित वासना के निःसरण का प्रयास था। अन्त में जब वे इस वरदान के अनुसार महाराज श्री दशरथ के रूप में जन्म लेते हैं तब भी उनके व्यक्तित्व में पूर्व जन्मों के संस्कार किसी न किसी रूप में विद्यमान थे। यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या ईश्वर के लिए यह सम्भव नहीं था कि वह भोग के स्थान पर वैराग्य के माध्यम से विषय सेवन के संस्कार से उन्हें मुक्ति दिला सकें! इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि भले ही ईश्वर सर्व समर्थ हो पर वह संविधान-निर्माता मनु को भी संवैधानिक पद्धति से ही साधना के पथ पर ले चलते हैं। यदि उन्हें समग्र विराग दे दिया जाए तो वे पितृ-स्नेह से भी मुक्त हो जाएंगें; जो उनके वरदान का मुख्य भाव था। ऐसी स्थिति में त्याग के स्थान पर भोग

का मार्ग ही उनके लिए उपयुक्त हो सकता था। महाराज श्री दशरथ के रूप में उनका जीवन इन्हीं मनोभावों से संचालित दिखाई देता है। वे पुनः राजा के रूप में ही जन्म लेते हैं। उनका जन्म ऐसे वंश में होता है जो धार्मिकता और मर्यादापालन के लिए संसार में प्रसिद्ध था। इस तरह वे मनु के रूप में बनाई हुई स्मृति को क्रियान्वित करने का अवसर प्राप्त करते हैं।

पौराणिक गाथा

वाचस्पति मिश्र

वाचस्पति मिश्र

वाचस्पति मिश्र बहुत विद्वान्, षड्दर्शनों के ज्ञाता, वेदान्त ज्ञान में परं निष्ठ आचार्य थे। एक समय वे वेदव्यासजी के द्व ारा रचित ब्रह्मसूत्र पर टीका लिख रहे थे। उसी दौरान उनका एक भामति नामक सुशील और संस्कारी कन्या से विवाह हुआ। विवाह होते से ही वाचस्पति पुनः अपने लेखन कार्य में झूट गएं। दिन रात वे ब्रह्मसूत्र पर चिन्तन करके उस पर भाष्य लिखने में रत थे।

भामती प्रतिदिन उनसे पूर्व उठ़कर अपने पतिदेव के कार्य की सब तैयारी कर देती थी। उन्हें समय से भोजन आदि देती थी। शाम को अन्धेरा होने के पूर्व ही दीपक जलाकर उनके समक्ष रख देती थी, जिससे कि उनके इस कार्य में किसी प्रकार का व्यवधान न हो। वाचस्पतिजी को इस कार्य को पूरा करने में कई वर्ष लग गएं। इस कार्य में पूर्णतः समर्पित होकर वे अपना कार्य करते रहें और उनके विवाह के सम्बन्ध में, उनकी पत्नी

आदि के सम्बन्ध में उन्हें कुछ भी स्मरण नहीं रहा। इस प्रकार वर्षों बीत गएं।

यह लेखन कार्य जब समाप्ति की ओर था। ऐसे में एक शाम को भामति दीपक प्रज्जवलित करके उनके समक्ष रखने आई। तब अचानक उनका ध्यान भामति की ओर गया और उनसे पूछ लिया कि, 'हे देवी! आप कौन है?' भामति ने मुस्कुराते हुए कहा कि 'स्वामी! मैं आप ही की पत्नी भामति हूं।' अपने विवाह की घटना आदि का भामति ने उन्हें स्मरण कराया। यह स्मरण होते ही वे अत्यन्त दुःखी हुएं और कहा कि इतने वर्षों तक तुम बगैर अपेक्षा के हमारी सेवा करती रही। समय समय पर हमारी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति करती रही और हमने उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। तुम्हारी सेवा और समर्पण की वजह से ही यह ब्रह्मसूत्र के भाष्य का लेखन कार्य सम्भव हुआ है। अतः यह टीका भामति के नाम से जानी जाएगी।

आज भी यह प्रसिद्ध भामति टीका विद्वानों में अत्यन्त आदरणीय है। किन्तु बहुत

कम लोग उसे वाचस्पति मिश्र द्वारा रचित बताते हैं। अधिकतर इसके टीकाकार वाचस्पति मिश्र भी भामतिकार के नाम से ही जाने जाते हैं। ज्हां गृहस्थ जीवन में जहां इस प्रकार के पति-पत्नी के अन्योन्य अपेक्षा से रहित सम्बन्घ और अपने कर्म में पूर्ण समर्पण होता है, वही गृहस्थ जीवन धन्य होता है।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम / मिशन समाचार
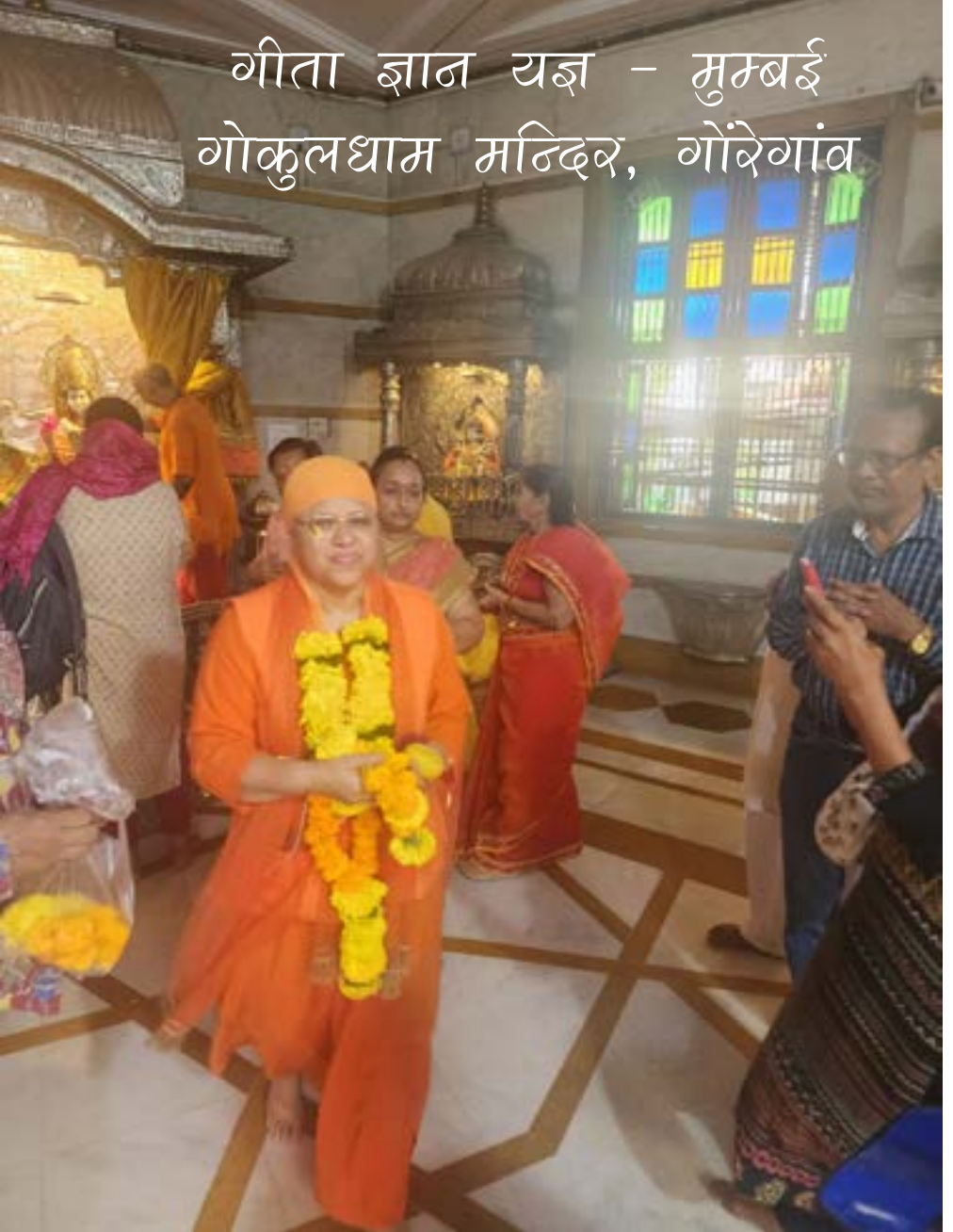
आश्रम / मिशन समाचार

गोकुलधाम मन्दिर

६ मई २०२२

आश्रम / मिशन समाचार

गीता अध्याय - ६, आत्मसंयम योग

आश्रम / मिशन समाचार

ध्यान का अभ्यास

आश्रम / मिशन समाचार

ध्यान का अभ्यास

आश्रम / मिशन समाचार

गीता ज्ञानयज्ञ समापन (१ से ४ जून)

आश्रम / मिशन समाचार

आश्रम में साप्ताहिक गीता कक्षा

आश्रम / मिशन समाचार

मनकामेश्वर महादेव पूजन

आश्रम / मिशन समाचार

परं पूज्य गुरुजी एवं भक्तवृन्द द्वारा

आश्रम / मिशन समाचार

निवासीय भक्तगण - आशीर्वाद लेते हुए

आश्रम / मिशन समाचार

राजकोट से भक्तों का आगमन

आश्रम / मिशन समाचार

श्री गंगेश्वर महादेव की आरती

आश्रम / मिशन समाचार

विनोद अरोरा का जन्मदिन

आश्रम / मिशन समाचार

शुभाशीष

आश्रम / मिशन समाचार

Welcoming TVS IQube EV at Ashram

आश्रम / मिशन समाचार

Blessed by P.P. Guruji
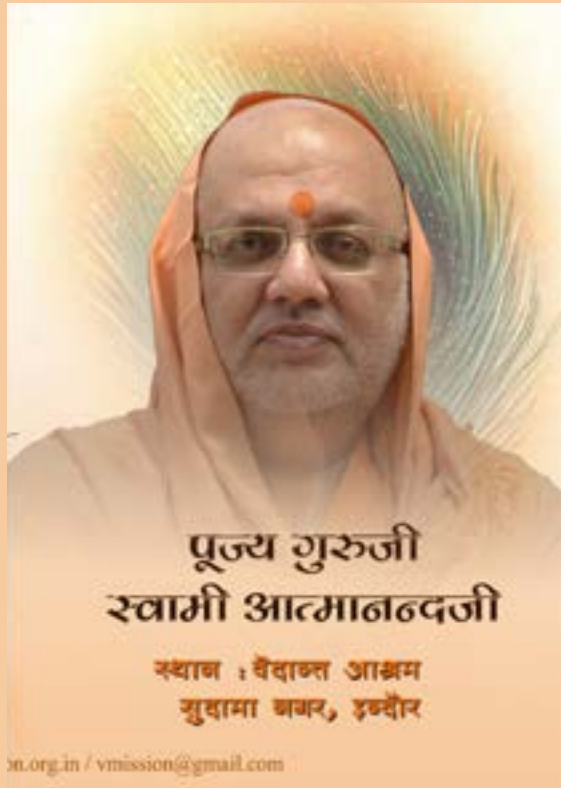
पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी

स्थान : वेदान्त आश्रम
सुदामा नगर, इन्दौर

on.org.in / vmission@gmail.com

अधिक मास शिविर

वेदान्त अध्ययन सत्र
(३० दिवसीय आवासीय सत्र)
दि. १८ जुलाई से १६ अगस्त २०२३

विषय :

तत्त्वबोध
(आदि शंकराचार्य विरचित)

ज्ञानादेव तु कैवल्यम्

ध्यान
प्रवचन, संस्कृत,
पूजा एवं श्लोकपाठ
परिचर्चा एवं प्रश्नोत्तर

Vedanta Mission / www.vmissi

गीता ज्ञान शिविर
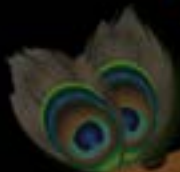
आवासीय शिविर

दि. 1 से 5 सितम्बर 2023

गीता अध्याय 4

ज्ञान कर्म संन्यास योग

(अवतार रहस्य)

ध्यान, पूजा/अभिषेक

श्लोकपाठ एवं प्रश्नोत्तर

पूज्य गुरुजी
(स्वामी आत्मानन्दजी)

जन्माष्टमी महोत्सव - 6 सितम्बर

प्रातः - शिविर समापन

सायं 8.30 बजे से जन्माष्टमी उत्सव

स्थानः वेदान्त आश्रम

सेक्टर-ई, 2948 सुदामा नगर, इन्दौर

www.vmission.org.in / vmission@gmail.com / 7000361938

शार्ट वेदान्त कोर्स

दि. 18 जुलाई से 16 अगस्त

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

पूज्य गुरुजी एवं आश्रम के महात्मा गण

श्रीमद् भगवद् गीता

(शांकर भाष्य समेत) नित्य कक्षाएं

प्रतिदिन प्रातः 8.30 बजे से (मंगल से शनिवार)

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी

श्रीमद् भगवद् गीता

साप्ताहिक कक्षाएं / प्रति शनिवार

प्रति शनिवार सायं 5.00 बजे से

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

पूज्य स्वामिनी अमितानन्दजी

Internet

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

~ Gita Ch. 06 (MIT)
~ Gita Ch. 12
~ Gita Ch. 17
~ Sadhna Panchakam
~ Drig-Drushya Vivek
~ Upadesh Saar
~ Atma Bodha Pravachan
- Sundar Kand Pravachan

~ Prerak Kahaniya
- Ekshloki Pravachan
~ Sampoorna Gita Pravachan
- Kathopanishad Pravachan
- Shiva Mahimna Pravachan
- Hanuman Chalisa
~ Laghu Vakya Vrittu (Guj)
~ Gita Ch. 5 (Guj)
~ Gita Upodghat Bhashya (Guj)

Vedanta Ashram YouTube Channel

Vedanta & Dharma Shastra Group

Internet News

Audio Pravachans

~ Gita Ch. 06

~ Complete Gita Pravachans

~ Gita Ch. 05

~ Nataka Deep

~ Sadhna Panchakam

~ Drig Drushya Vivek

~Upadesh Saar

~ Prerak Kahaniya

~ Sampoorna Gita Pravachan

~ Atmabodha Lessons

Monthly eZines

Vedanta Sandesh - July '23

Vedanta Piyush - June'23